ज़िन्दगी का सिस्टम

लेखक : आयतुल्लाहिल उज़मा सय्यदुल उलमा मौलाना सै0 अली नक़ी नक़वी
सम्पादन : नूरे हिदायत फ़ाउण्डेशन

(क़िस्त : १६)

छटा अध्याय

रोज़ा

रोज़े के मानी

अरबी में रोज़े के लिए सौम है जिसके डिक्शनरी में मानी 'सुम्त' यानी 'चुप्पी' के हैं। और इस मानी में हज़रत मरियम की ज़बानी क़ुरान मजीद में ज़िक्र है। '*इन्नी नज़रतु लिर्रहमानि सौमा*' इस के मानी ये हैं कि मैंने चुप रहने की मन्नत की है। सौम के दूसरे मानी परहेज़ करने (दूर रहने, रूकने) के हैं, मैं समझता हूँ कि पहले मानी पर भी सौम का इस्तेमाल इसी मानी के लेहाज़ से है। वह भी बात करने से परहेज़ करना और अपनी ज़बान को बात करने से रोकना है, इस लिए इसको 'सौम' कहते हैं। शरीयत ने इसी मानी को लेते हुए इसमें कुछ घेर और फैलाव के साथ पारिभाषिक (Termmological) मानी रखे ये हैं, और ऐसा ही शरीयत ने सारी चीज़ों में किया है।

जैसे सलात के क्या मानी थे? दुआ, लेकिन वह अब खुदा के यहां एक ख़ास तरह की गुज़ारिश (निवेदन) बन गयी, जो खड़े होने, बैठने, और रुकू और सजदों के साथ हो। यानि 'सलात' के मानी नमाज़ के हैं।

हज क्या था? इरादा, मन बनाना लेकिन अब वह ख़ास मक्का जाने का इरादा है, जो ख़ास तरीके के साथ काम करके पूरा किया जाय।

ज़कात क्या है? पाकी, शुद्ध होना, लेकिन अब वह माल में से एक ख़ास हिस्से (Quantity) के निकालने का नाम है जो माल को पाक करता है। इसी तरह 'सौम' (रोज़ा) के मानी दूर रहना, बचना, शब्द के माने के लेहाज़ से कुछ वाजिब चीज़ों को छोड़ना और कुछ मुस्तहब चीज़ों से दूर रहना भी, इसके लेहाज़ से सौम कहा जा सकता है। मगर शरीयत के लेहाज़ से कुछ ख़ास वक़्त में ख़ास चीज़ों का छोड़ना जिससे शरीयत ने उस वक़्त में मना किया है, वह ख़ास नीयत और इरादे के साथ सौम (रोज़ा) है और इस्लामी हैसियत से फ़र्ज़ (वाजिब अनिवार्य) किया है। और पूरे रमज़ान महीने के दिनों में इसे वाजिब किया है। इसके अलावा किसी दूसरी वजह से भी वाजिब हो सकता है। जैसे नज़र या कफ़्फ़ारह या क़सम वग़ैरह, लेकिन इस वक़्त हमारा मक़सद रमज़ान महीने के रोज़े के बारे में बयान करना है।

तीस रोज़े क्यों रखे गये ?

"आखिर इस्लाम में तीस दिन के लगातार रोज़े क्यों वाजिव किये है। क्या इसका मक़सद सिर्फ़ रूह को ऊचाई तक पहुँचाना है। अगर ऐसा है तो मुझे ये कहने की इजाज़त दीजिए की इस्लाम ने रूहानियत की धुन में माद्दियत (Materialism) से बिल्कुल आँखें बंद कर ली, जबकि ये ज़रूर है कि इस्लाम ने राहिब, ब्रहमचारी होने यानि शादी–ब्याह न करने और दुनिया को तज देने को बुरा कहा है और बियाहता ज़िन्दगी बिताने की तारीफ़ की है, लेकिन इसके अलावा इन्सानी ज़िन्दगी के दूसरे माद्दी (Material) पहलूओं से बड़ी हद तक ग़फ़लत बरती है।"

ये एतराज़ वाला वह सवाल जो मेरे सामने है इसके लिए मैं आगे चल कर रोज़े के वाजिब होने, के हुक्म, उसकी मसलहेत और फ़ायदा बयान करूँगा। लेकिन अभी एक बड़ी चर्चा "रूहानियत और मदिदयत (Spiritualism & Materialism/आध्यात्मिकता

और भौतिकता) के बारे में करना चाहता हूँ। इस्लाम में इन दोनों का क्या रिशता है और इस्लाम ने कितना उनकी तरफ़ ध्यान दिया है।

मादि्दयत और रूहानियत का विस्तार से बयान

जिस्म के बन्धन में जकड़े रहते हुए रूह का माद्दे के साथ ऐसा रिशता है कि एक को दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता और दोनों का इस तरह का लगाव है कि एक का असर दूसरे पर पड़ता है। रूहानी एहसास का असर जिस्म पर और जिस्म का असर रूह पर पड़ता है। रूह का असर शरीर पर खुला हुआ है जैसे डर रूह का एक एहसास है मगर इससे चेहरे पर पीलापन, आँखों का घूमना, होंठों में सूखापन, जिस्म में थरथराहट पैदा हो जाती है। और फिर जिस तरह का एहसास हो वैसा ही असर, अचानक धमाके का वक़्ती एहसास, इसका नतीजा उछल पड़ना और बराबर डर का असर, खास तरह से दिखाई देता है। गुस्सा भी रूहानी एहसास है। इसका असर आँखों का लाल हो जाना चेहरे का तमतमाना, दाँतों का पीसना, नथनों का फूलना और तन–बदन का काँपना होता है। खुशी भी रूहानी हालत है। उसका असर चेहरे पर एक ख़ास तरह की हलकी सी लाली का दौड़ जाना, होठों पर मुस्कुराहट और ज़्यादा ठट्ठे की आवाज़ होना, हो जाता है।

ऐसे ही लाज, पछतावा और शर्म हर एक के लच्छन अलग–अलग हैं, वह जिस्म पर दिखाई देते हैं। ये है रूह के असर का जिस्म पर असर। अब रह गया जिस्म का रूह पर असर, ये भी ज़ाहिर सी बात है। अक्सर तबियत की ख़राबी, अक़्ल पर पड़ती है यानि बीमारी की हालत में तबियत में चिड़चिड़ापन पैदा हो जाना, बात–बात पर गुस्सा आना ये इस का एक छोटा सा नमूना है। जिगर की खराबी में सोने में बुरे बुरे सपने दिखाई देना इसी का नतीजा है कि शरीर की ख़राबी ने रूह के एहसास पर असर डाल दिया। मिराकी माली खूलिया (Melancholia) के रोगी के ख़यालों सोंच और समझ भी इसी का नतीजा है। आदमी की रूह उसके पैदा होने से आख़िर तक एक ही रहती है। पलना बढ़ना जिस्म की ख़ासियत है, रूह की नहीं है, मगर जिस्म के बढ़ने के साथ–साथ समझ में पक्कापन) पैदा होते रहना और फिर बुढ़ापे में अकसर वक़्तों में अक़्ल का बहक जाना भी इसकी दलील है कि इन्सान के जिस्म की ताक़त का असर रूह की ताक़त और अक़्ली एहसास पर पड़ता है।

मालूम हुआ कि इन्सान की रूह और उसके जिस्म में इस ज़िन्दगी में चोली दामन का साथ है। इसलिए एक के बढ़ने और ठीक रहने का असर दूसरे पर पड़ना ज़रूरी है।

आदमी रूह और जिस्म के एके का नाम है, इसलिए कामयाब मज़हब वह है जो इस समोये हुए आकार को बाक़ी रखते हुए आदमी को बढ़ने का मौक़ा दे और ज़िन्दगी के उसूल बताये।

ऐसा मज़हब जो उनमें से एक की बिल्कुल अनदेखी कर दे फ़ितरी (Natural/Practical) मज़हब नहीं समझा जा सकता। आदमी की ज़िन्दगी का मक़सद ये नहीं हो सकता कि उसकी रूह जिस्म से अलग हो जाय नहीं तो वह बच्चा जो माँ के पेट से पैदा होते ही दुनिया से चला गया वह अपनी ज़िन्दगी के मक़सद के लेहाज़ से सबसे ज़्यादा कामयाब समझा जायेगा मगर ऐसे में समझ में नहीं आता इसको दुनिया में आने ही की क्या ज़रूरत है? आदमी की रूह का कमाल तो समझ (बोध) और कर्म से पैदा हो सकता है। समझ यानी अक़ीदा (आस्था/विश्वास) और अ़मल यानी अच्छे काम और सेवा करना ही रूहानियत के कमाल के दो पहलू हो सकते हैं। मगर ये दोनों आदमी की शरीर की ताक़त (Physical Power) से जुड़े हैं। सोच और समझ दिमाग़ से और काम, कर्म जिस्म के हिस्सों (हाथ, पैर) से जुड़े हैं।

अब अगर रूहानियत की तरक़्क़ी के लिए उन जिस्म के हिस्सों (हाथ, पैर, वग़ैरह) को बेकार रखा गया तो वह खुद सोच समझ और कर्म जो रूहानी तरक्क़ी की वजह हैं कम हो जायेंगे। मिसाल के तौर पर ऐसा मज़हब जिसके नजदीक इबादत और रूहानी तपस्या का तरीक़ा ये है कि आदमी सांस रोक कर मुर्दो की तरह लेट जाय और उस मुर्दे की तरह की ज़िन्दगी से न दुनिया (खुदा के पैदा किये हुओं) की सेवा का कोई काम हो सकता है और न ही सोच समझ में तरक़्क़ी हो सकती है क्यों कि ये एक बेहोशी सा होगा जिसमें एहसास और समझ भी बेकार हो कर रह जायेंगे।

इसी तरह इबादत भक्ति का यह तरीक़ा कि आदमी अपने हाथ को सुखा डाले तो अब इस हाथ से

अच्छे काम, जैसे गिरते हुए को सम्भालना, कमज़ोरों की मदद करना, ग़रीबों की देख रेख, सब ख़त्म हो गये।

पैरों को सुन्न बना लिया तो बहुत से नेक काम जो पैरों से हो सकते थे, ख़त्म हो गये। फिर भला ये काम रूहानी तरक्क़ी का कारण कैसे समझा जा सकता है? मज़हबी शिक्षा वही सही शिक्षा हो सकती है जो भरपूर और हर पहलू पर छायी हो। अगर एक के लिए रूहानी तरक्क़ी का ज़रिया ये समझा जाये कि वह हाथ को सुखा ले तो सबके लिए ये रूहानी तरक्क़ी का ज़रिया होगा। लेकिन ज़रा सोचिए कि अगर सभी इन्सान हाथों को रोक कर रूहानी तरक्क़ी लेने लगे तो क्या फिर मानवता जीती रह सकती है और क्या कुछ ही दिनों में दुनिया आदमी से ख़ाली नहीं हो जाएगी?

अब देखिये कि रूह और जिस्म का मेल जिसका पहले बयान किया गया है सिर्फ़ अल्लाह की कुदरत ताकत और उसके गठन का नतीजा है वरना रूह और जिस्म दो अलग (Opposite) चीज़ें हैं जिनके गुण और लच्छन बिल्कुल अलग हैं। एक है आसमान में उड़ने वाली (रूह) और दूसरा ज़मीन से लगा (जिस्म)।

ये सिर्फ़ खुदा की कुदरत का नतीजा है कि उनमें लगाव पैदा हो गया है। उसने उन दोनों को समो दिया है। इस लिए रूह में कुछ अपने ऊँचे दर्जे के गुणें को माद्दी (Physical) जिस्म की वजह से तज दिया और जिस्म ने कुछ अपने निचले गुणों को रूह के आने से बदल दिया। मगर इसके बाद भी उन दोनों के अपने अपने खास गुण और लच्छन अलग–अलग हैं। रूह का भोजन अलग है और जिस्म का खाना अलग हैं।

रूह को मारने वाला ज़हर कुछ और है और जिस्म को मारने वाला ज़हर कुछ और, चूँकि अब रूह और जिस्म दोनों को पालना पोसना ज़रूरी है इसलिए रूह को उसका खानपान पहुँचाना चाहिए और जिस्म को उसका खानपान, न इसकी अनदेखी की जा सकती है और न उसे मिट जाने के लिए छोड़ा जा सकता है, मगर याद रखें कि दो चीज़ें जिन का साथ होता है दो तरह की हो सकती हैं। एक ये कि दोनों बराबर की हैं। जैसे दो भाई जिन्होने बराबर की पूँजी से एक बराबर (Business) शुरू किया हो तो ज़ाहिर है फ़ायदा–नुक़सान में ये दोनों बराबर के साझी होगें और किसी एक का दूसरे से ज़्यादा ध्यान नहीं किया जा सकता।

दूसरी सूरत ये है कि एक का दर्जा ऊँचा हो और दूसरा उसके मुक़ाबले में नीचा हो। जिस तरह सवार और सवारी का, दोनों एक दूसरे की ज़रूरत हैं लेकिन सवार का खानपान अलग और सवारी का अलग होता है। एक जो उनको पालन का ज़िम्मेदार है उसे सवारी को उसका खानपान पहुँचाना चाहिए और सवार को उसका खानपान, लेकिन अगर दोनों की जरूरतों में टकराव हो जाय, एक ऐसा वक़्त आ जाए कि या तो सवारी की ज़िन्दगी का सामान इकट्ठा किया जाय या सवार का तो फिर सवार का सवारी से आगे होगा इसके मानी ये हैं कि सवारी का लेहाज़ उसी हद तक किया जाएगा जब तक सवार के लिए ख़तरा न पैदा हो। वरना मजबूरी में सवारी का ख़याल छोड़ना पड़ेगा।

इस्लाम के नज़दीक रूह और जिस्म की हैसियत यही है। रूह इसके नज़दीक बढ़ी हुई है, इसलिए रूह का पहला दरजा है और जिस्म का मर्तबा नीचा है इस लिए उसका दूसरा दरजा है।

मगर ये जिस्म इसी रूह की तरक़्क़ी का एक ज़रिया है। समझ लीजिए कि जिस्म रूह की सवारी है, इसलिए रूह की वजह से सही उस जिस्म की ज़रूरतों का ख़्याल रखना ज़रूरी है। लेकिन ये उस वक़्त तक जब तक कि रूह की ज़िन्दगी और उसके फ़ायदे से टकराव न हो लेकिन अगर ऐसा मौक़ा आ जाय कि जिस्म को खाना पहुँचाना रूह के लिए नुक़सान हो या मरने की वजह बन जाए तो जिस्म के नुक़सान की परवाह इस हद तक नहीं की जायेगी। इसी तरह अगर रूह की बाढ़ और उसकी तरक़्क़ी किसी ख़ास दर्जे तक जिस्म को तकलीफ़ पहुँचाने पर निर्भर हो तो उतनी तकलीफ़ को गवारा कर लिया जाएगा।

यूँ समझिए कि असली मक़सद जिस्म का पालना पोसना नहीं है बल्कि रूह के बाक़ी रखने और उसकी तरक़्क़ी की वजह से है।

किसी का कहना है – "खुरदन बराय ज़ीसतन अस्त न ज़ीसतन बराय खुरदन" (खाना जीने के लिए है, न कि जीना खाने के लिए।) और ये वह प्वाइन्ट (Point) है जहाँ से इस्लाम और माददीयत (वस्तुवाद) में अलगाव होता है क्योंकि माद्दीयत माद्दे (Matter) की तरक़्क़ी को असली मक़सद बताती है और इस्लाम ने जिस्म के पालने पोसने को भी ज़रूरी समझा है मगर इसलिए कि रूह का उससे लगाव है और रूह का बाक़ी रहना और

उसकी तरक़्क़ी इस पर निर्भर है और इस लेहाज़ से माद्दी जरूरतों (Physical Requirements) को पूरा करना भी रूह की ही वजह से है और इस वजह से इस आयत *"मा ख़–लक़्तुल् जिन्–न वल इन्–स इल्ला लियाबुदून"* में जो इबादत को 'मक़सद' बताया गया है वह खाने–पीने, सोने, आराम करने को भी अपने घेरे में ले लेता है जबकि उनका मक़सद सिर्फ़ मौज मस्ती और आराम की चाह न हो बल्कि उसके आगे कुछ और हो, यानि जिस्म को फ़र्ज़ कर्त्तव्य पूरा करने के क़ाबिल रखना जो मानवता का 'मक़सद' है।

इस्लाम ने माद्दी जिन्दगी का किस–किस तरह ख़याल रखा है!

मालूम होना चाहिए कि जो चीज़ खुद अपने आप में पसन्द हो उसका दूसरों के कारण होना भी पसन्द होगा अगर माददी ज़िन्दगी तज देना खुदा के यहां रूहानी तरक़्क़ी के लिए चहीता होता तो जान का लेना (हत्या) कोई जुर्म न होता क्योंकि इस ज़रिए से उस आदमी को उस रूहानी तरक़्क़ी के दर्जे पर पहुँचाते हैं जो माद्दी ज़िन्दगी से रिश्ता तोड़ देने पर निर्भर है हाँलाकि जान का क़त्ल वह बड़ा गुनाह है जिस को शिर्क (खुदा में किसी को साझी बनाना/समझना) के बराबर कहा गया है इतना ही नहीं बल्कि दूसरों की जान की हिफ़ाज़त वाजिब बताई गई है। यहाँ तक कि अगर नमाज़ जैसी अफ़ज़ल (सर्वश्रेष्ठ) इबादत का वक़्त कम हो मगर उस वक़्त कोई डूब रहा हो तो उसको बचाने के लिए नमाज़ का उस वक़्त छोड़ना ज़रूरी है। ये है दूसरे की माद्दी ज़िन्दगी की हिफ़ाज़त। और अपनी माद्दी ज़िन्दगी इसके लिए 'खुदकुशी' (आत्महत्या) को बहुत बड़ा गुनाह बताया गया है। खुदकुशी में होता क्या है? इसी माद्दी ज़िन्दगी से रिश्ता टूट जाना ? फिर अगर इस्लाम की नज़र में माद्दी ज़िन्दगी की अहमियत न होती तो वह खुदकुशी को गुनाह क्यों कहता? इतना ही नहीं बल्कि शरीयत ने जान की हिफ़ाज़त के लिए अपने हुक्म तक में बदलावों को सहा। 'तक़य्या' क्या है? यही कि जान बचाने के लिए इन्सान बहुत सी उन बातों को करता है या बहुत से उन फ़र्ज़ को छोड़ देता है जिसका छोड़ना आम हालात में जायज़ नहीं था।

कुफ्ऱ व शिर्क के बोल जब़ान पर लाना और रसूल[स०] की शान में बेतुके शब्द इस्तेमाल करना यही वह है जिसके बारे में आयत आई है।"

इस आदमी को कोई गुनाह नहीं जो मजबूरी में ऐसा करे मगर उसका दिल ईमान पर टिका हुआ हो।

नमाज़ ऐसी अहम इबादत लेकिन 'तक़य्या' के मौक़े पर वुज़ू हमारे तरीक़े के लेहाज़ से ग़लत हो पाता है। नमाज़ ग़लत तरीक़े से होती है, मगर जायज़ है, ये उस सूरत में जब कि जान की हिफ़ाज़त उस पर निर्भर हो। फिर वक़्त गुज़रने और डर ख़त्म हो जाने पर उन नमाज़ों की क़ज़ा (बाद में पढ़ना) तक भी ज़रूरी नहीं है, अपने वक़्त वह ख़ुदा के हुक्म के मुताबिक़ पूरी हो चुकी हैं।

रोज़ा – अगर ऐसा मौक़ा आ जाए कि आपको सूरज डूबने के वक़्त यानी जब अहले सुन्नत रोज़ा अफ़तार करते हैं उसी वक़्त रोज़ा अफ़तार करना पड़े तो ये रोज़ा जायज़ होगा और फिर उसका रखना और क़ज़ा भी ज़रूरी नहीं होगी।

ज़कात :– अगर आपको मोमनीन और मुस्तहक़ लोगों तक पहुँचाने में अपने माहौल की वजह से ख़तरा है और इस लिए वह ज़कात उन मुसलमानों को देनी पड़ती है जो आप के नजद़ीक सही ईमान से दूर हैं तो तक़य्या की वजह से उन ही को दे देना ज़िम्मेदारी से बरी हो जाने के लिए काफ़ी हो जाएगा।

इसी तरह हज और जिहाद वग़ैरह सारे शरीयत के हुक्म पर उसका असर पड़ता है। जितने निजी गुनाह हैं वह भी इस तक़्य्या के तहत जायज़ कहे जा सकते हैं। इसलिए दूसरों का ख़ूँन बहाना किसी तरह भी जायज़ नहीं हो सकता। अपनी जान की हिफ़ाज़त के लिए दूसरे की जान लेने का कोई, हक़ नहीं है।

क्या इससे बढ़ कर माद्दी ज़िन्दगी का कोई ख़याल हो सकता है। इसके अलावा जिस्म की सेहत (Health) के फ़ायदे के लिए कितना शरीयत के हुक्म में बदलाव किया गया है।

नमाज़ ही को ले लीजिए कि जो अफ़ज़ल इबादत है। इसकी ज़रूरी शर्त पाक है मगर ज़रा सा पानी के इस्तेमाल से नुक़सान का डर हुआ या बीमारी का डर हुआ और पाक होने का फ़र्ज़ बदल गया। गुस्ल या वुज़ू के बदले तयम्मुम का हुक्म हुआ, ये किस लिए ? सिर्फ़ माद्दी जिस्म की सेहत के लिए, खुद नमाज़ में खड़े होकर नमाज़ पढ़ने से ज़्यादा तकलीफ़ हो तो बैठ कर नमाज़ पढ़े। बैठ कर नमाज़ पढ़ने में परेशानी हो तो लेट कर नमाज़ पढ़े।

(बक़िया पेज नं० १४ पर.........)

शकील हसन शम्सी भी इसी खानदान से वाबस्ता मुल्क के बड़े सहाफियों में से हैं। दुरदर्शन से कई साल तक वाबस्ता रहने के बाद आप कुछ सालों तक उर्दू अख़्बार 'राष्ट्रीय सहारा' से जुड़े रहे। मौजूदा दौर के मसाएल से मुताल्लिक़ आपकी कई किताबें मंज़रे आम पर आ चुकी हैं। हालाते हाज़ेरा पर आपकी अच्छी नज़र है। सहाफत के साथ आ अच्छे शायर और एंकर भी हैं। आपके फ़रज़न्द भी इलेक्ट्रानिक जर्नलिज़्म में क़दम रख चुके हैं।

सैय्यदुल उलमा के नवासे सैयद अज़ीज हैदर पिछले सतरह सालों से अंग्रेज़ी सहाफ़त से जुड़े रहे हैं। कई सालों तक आपके मज़ामीन हिन्दु, हिन्दुस्तान टाईम्स, हिन्दु बिजनेस लाईन, ट्रिब्यून, बिजनेस वर्ल्ड, हाई टाईम, दैनिक जागरण वग़ैरा अख़्बारों और इंद्रमा, इंण्डिया टूडे प्लस, लाईफ वाच और हदीसे दिल जैसी मैग्ज़ीनों में जगह पाते रहे हैं। हाल में आप रियल न्यूज़ इण्टरनेशनल (आर एन आई) न्यूज़ एजेंसी में एसोसिएट एडीटर हैं जिसके ज़रिए आपके मज़ामीन मुल्क भर में अंग्रज़ी, हिन्दी और उर्दु के 80 से ज़्यादा अख़बारों में छपते रहते हैं। आप अब तक नौ किताबें लिख चुके हैं। सैय्यदुल उलमा के कायम कर्दा इदारे 'यादगारे हुसैनी' के आप सेर्केट्री हैं जिसके तहत आपने रद्दे वहाबियत, कातिलाने हुसैन अ. का मज़हब ओर शहीदे इंसानियत जैसी किताबों को प्रकाशित किया। आप आला सहाफ़ती मेयार बरक़रार रखने वाले ईमानदार सहाफ़ी के तौर पर जाने जाते हैं।

सैय्यद मुहम्मद मेहदी (उर्फ़ी) ख़ानदाने इज्तेहाद से जुड़े सहाफ़ियों की फ़ेहरिस्त को मज़ीद पुरनूर बनाते हैं। आप उर्दु सहाफ़त में अपने आला रिर्पोटिंग मेयार के लिए जाने जाते हैं। आप लखनऊ के कई बड़े अख़बारों से वाबस्ता रहे हैं। यही सब्र है कि लखनऊ के सहाफ़ी हल्कों में मक़बूल हैं। फ़िलवक्त आप उर्दु रोज़नामे 'कौमी ख़बर' से वाबस्ता हैं।

हज़रत गुफ़रानमॉब की औलाद में मौलाना सैय्यद हसन नक़वी मरहूम के फ़रज़न्द हुसैन अख़्तर नक़वी का नाम भी फ़रामोश नहीं किया जा सकता जो इलेक्ट्रानिक जर्नलिज्म से गुज़िश्ता क़रीब पन्द्रह सालों से जुड़े हैं। इस दौरान आप टाइम्स नाओ, सहारा, न्यूज़ एक्स, आज तक और कई दूसरे टीवी न्यूज़ चैनलों से जुड़े रहे। जनाब साग़र ख़्यामी मरहूम के तीनों फ़रज़न्द मुम्बई में रहते हुए मीडिया के मुख़्तलिफ़ शोबों से जुड़े हैं और कामियाबी से हमकिनार हैं।

ख़ानदाने गुफ़रानमॉब के अफ़राद सहाफ़त के अलावा भी इल्मी अदबी और मआशरती हलकों में अपनी खिदमात दे रहे हैं। सबका जिक्र कर पाना यहां मुम्किन नहीं।

(पेज नं० ६ का बक़िया..........)

यह सब माद्दी जिस्म के चैन आराम का ख़याल नहीं है तो क्या है ? सफ़र में "क़स्र नमाज़[1] का हुक्म भी सिर्फ़ इसी बुनियाद पर है। ज़ाहिर है कि रूह को सफ़र और पड़ाव के लेहाज़ से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता, ये सफ़र की माद्दी मेहनत कठिनाई ही है जिस के लेहाज़ से फ़र्ज़ में कमी कर दी गई।

नमाज़ की शर्तो में से कपड़ा भी है। रेशम के कपड़े में नमाज़ पढ़ने की मर्दो के लिए मनाही है। मगर जेहाद की हालत में रेशमी कपड़े की इजाज़त दी गयी है, सिर्फ़ जिस्म की भलाई से। क्योंकि रेशम ज़ख़्म के लिए फायदेमंद है। खुद रोज़े का हुक्म जिसे बहुत ज़्यादा इन्सान के माद्दी पहलू से बेयर वाही बताया जा रहा है इसमें किस तरह आदमी के हालात का ख़्याल किया गया है। अगर कोई बीमार हो और नुक़सान का डर हो तो रोज़े के फ़र्ज़ को हटा दिया गया। इसी तरह बड़े बूढ़ों के लिए जिन्हें रोज़ा आम तौर पर कड़ा हो और सहने वाला न हो या वह औरत जो मॉ बनने वाली हो और बीमार, इन सबको इजाज़त दी गयी है कि वह रोज़े को उन हालात में छोड़ सकते हैं। सफ़र की हालत में भी रोज़ा छोड़ देने को कहा गया है ये ईन्सान की मद्दी ज़िन्दगी का ही लेहाज़ नहीं है?

मालूम हुआ कि ये कहना बिल्कल सही नहीं है कि इस्लाम ने माद्दी ज़िन्दगी का कोई लेहाज़ नहीं किया है और रूहानियत की धुन में माद्दीयत से बहुत हद तक बेपरवाही बरती है, ऐसा हरगिज़ नहीं है बल्कि इस्लाम ने क़दम क़दम पर माद्दी ज़रूरतों का लेहाज़ किया है।

बेशक वह माद्दी चैन आराम और मज़े व खुशी की इतनी आव भगत नहीं कर सकता कि फ़र्ज़ों की बिल्कुल अनदेखी कर दे और इन्सान को बेलगाम छोड़ दे, वह इस ज़िन्दगी को बिल्कुल कुर्बान (Sacrifice) कर देने का न्योता देता है जबकि किसी ऊँचे मक़सद की हिफ़ाज़त और रूहानियत की तरक़्क़ी जान को जोखिम में डालने पर निर्भर हो जैसे 'जेहाद' की मंज़िल। और इस हद तक कठिनाई सहने को ज़रूरी ठहराया है जो शरीयत के हुक्म पर चलने के लिए नेचर से ज़रूरी है।

बेशक उन शरीयत के हुक्मों में छिपा है और फ़ायदे बनते है। **(जारी..............)**